-: द्वितीय अध्याय :-

महानगरीय जीवन का स्वरूप

* द्वितीय अध्याय *

महानगरीय जीवन का स्वरूप

महानगर वर्तमान समय ने निर्माण किया वह प्रतीयमान प्रस्तुति है, जो बड़ी तीव्रता से परिवर्तित होते समाज का एक समूह है। महानगर वह है जो आसपास के सभी छोटे - छोटे गाँवों, कस्बों और नगरों को अपने विस्तार के दौरान अपने में समा लिया है। अधिकतर महानगर किसी मुख्य मार्ग के आस - पास ही निर्मित होते हैं।

महानगरीय जीवन के स्वरूप की जानकारी हासील करने से पहले " महानगर" किसे कहते हैं यह देखना जरूरी है - "महानगर" शब्द अंग्रेजी के " मेट्रोपोलिस" का पर्यायवाची है। "मेट्रोपोलिटिन" शब्द की उत्पत्ति ग्रीक साहित्य के "मेट्रोपोलिस" शब्द से हुई है। ग्रीक साहित्य में इन शब्दों का अर्थ क्रमश: "माता" एवं "नगर" है। अत: ग्रीक साहित्य में "मेट्रोपोलिस" का अर्थ "मातृनगर" समझा जाता था।"[1]

आधुनिक काल में महानगर केवल रहने, काम करने का स्थान नहीं किन्तु वह सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक पारिवारिक एवं सामाजिक पक्ष इन सभी क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करने से हमें महानगरीय जीवन का बोध होता है। यहाँ इन सभी क्षेत्रों के माध्यम से महानगरीय जीवन का स्वरूप देखेंगे। -

[१] महानगरीय जीवन का सांस्कृतिक पक्ष :-

महानगरों की संस्कृति भी वहाँ के बहुरंगी निवासियों की तरह होती है। महानगरों की संस्कृति जाति और प्रदेश के आधारपर न होते हुए वर्ग के आधारपर विभाजित होती है

जो इस प्रकार है -

[अ] उच्च वर्ग :- यह वर्ग महानगरों में ऊँची - ऊँची इमारतों में रहता है। इस वर्ग के पास जीवन का हर सुख रहता है। यह वर्ग कला को परख लेता है, उसे समझता है। हर एक कलाकार की कला को परखकर उसे पनाह देता है। यह वर्ग कला और कलाकार दोनों को प्रोत्साहित करता है। इस वर्ग की संस्कृति क्लब, पार्टियाँ, डांस होती है। यह वर्ग पाश्चात्य शिक्षा के साथ - साथ पाश्चात्य रंग ढंग को भी अपना लेता है। जैसे - " मिसेज सिंह के चेहरे पर जो भाव आया, वह कुछ - कुछ फ्रांसीसी किस्म का था। कन्धे भी उन्होंने खास कॉन्टिनेण्टल अंदाज से हिलाए। इससे बाँहें सोफे के बाहर फैल गयीं।"[२] उच्च वर्ग में पार्टियाँ, आयोजन के प्रति एक होड सी रहती है। अपने वर्ग में अपना वैयक्तिक स्थान बनाए रखना यही एक उद्देश्य इसके पीछे रहता है।

[ब] मध्य वर्ग :- महानगरों में यह वर्ग बहुत बड़ा है। महानगर में स्थित मध्य वर्ग बहुविध छटाएँ लिए हुए हैं। जो इस प्रकार हैं -

[I] उच्च मध्य वर्ग :- इसमें अफसर, सफल उद्योगपति एवं व्यापारी शामिल हैं। ये जीवन में अनेक कठिनाईयों का सामना करने के बाद सफलता पाते हैं। ये गैर मार्गों से धन कमाते हैं। इस धन प्राप्ति के साथ - साथ वे समाज में अपना नाम भी कमा लेते हैं। इनकी जिन्दगी क्लबों में इकट्ठे होकर ताश खेलने और बिजनेस तय करने तथा साड़ियों और गहनों के प्रति आकर्षित रहने तक ही सीमित होती हैं।

[II] मध्य - मध्यवर्ग :- दफ्तरों में काम करनेवाले छोटे अफसर,

बुद्धिजीवी और मध्यम दर्जे के व्यापारियोंका वर्ग हैं। व्यापारी के जीवन में संस्कृति वह होती है जो फिल्म और टी. वी. के अतिरिक्त इनके लिए कुछ नहीं होता। यह वर्ग अन्य किसी क्षेत्र से प्रभावित नहीं होता। इसका कारण यह होता है कि इन्हें व्यापार के दाँव पेच और भागदौड़ न तो इतना अवकाश देते है न ही शिक्षा दीक्षा और कला का कोई विशेष स्थान होता है। बुद्धिजीवी वर्ग ही महानगर के सांस्कृतिक पक्ष की जान होते हैं। इन्हीं के कारण सिनेमागृह, संग्रहालय और नाट्य गृह आबाद रहते हैं। इस वर्ग में बौद्धिक वर्ग परिचर्चा से ही इनकी मानसिक भूख शांत होती है। इसमें और एक वर्ग है जो स्वयं पर कला और साहित्य का मुखौटा लगाकर विशिष्ट समझा लेता है। महानगरों में कॉफी हाउस और रेस्टॉरेंट आदि इन्हीं वर्गों से भरे हुए होते हैं। जो एक दूसरे के विचार विनीमय का स्थान होता है।

[III] निम्न मध्य वर्ग :- इस वर्ग की चिंता रोजी-रोटी तक ही सीमित रहती है। इस वर्ग में कला के लिए कोई उदात्त गुंजाइश नहीं रहती। इस वर्ग में प्राय: चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी आते हैं जो इस प्रकार हैं - हर रोज छोटे - मोटे धन्दों से ताजा कमाई करनेवाले, फेरीवाले आदि। इस वर्ग का महानगरोंमें सांस्कृतिक जीवन सार्वजनिक पार्कों, गली मुहल्लों आदि में इकट्ठे होकर गप्पे लगाने, निन्दा - चुगली लगाने और सस्ते फिल्मी गानों के संगीत में अपनी अभिव्यक्ति महसूस करते है।

[क] निम्न वर्ग का सांस्कृतिक पक्ष :- इस वर्ग में वे आते हैं जो दिनभर रिक्शा चलानेवाले, फॅक्टरी में काम करनेवाले

मजदूर, जिन्हें दो वक्त की रोटी और सर पर छत का भी इंतजाम नहीं कर पाता। यह वर्ग हमेशा दरिद्रता में अपना जीवन बीतता रहता है। इस वर्ग को साहित्य, कला, संगीत, सौंदर्यबोध आदि का कोई महत्व नहीं होता। इनका जीवन सीमित होता हैं। साहित्य और कला उनके लिए ऐय्याशी लगती है। दिन भर काम करना और रात में खाना खाने के बाद आराम से नींद लेना यही उनका जीवन है। अपना अलग अस्तित्व स्थापन करने के लिए यह वर्ग कोशिश में रहता है लेकिन वे उस हद तक नहीं पहुँच पाता।

[२] राजनीतिक पक्ष :- लोकतंत्र में राजनीति जन पर आधारित होती है। जिस नेता का जनाधार प्रबल होता है, वह उतनाही असरदार नेता होता है। भारत की सबसे अधिक जनता गांवों में रहती है। गावों में ही राजनीति की जोड़-तोड़ अधिक देखने को मिलती है। महानगरों में इसके विपरित परिस्थिति रहती है। तेज जीवन, शिक्षा का प्रसार और व्यस्तता आदि के कारणवश महानगर के आदमी को राजनीति से कोई मतलब नहीं रहता। फिर राजनीतिक लोग जनता को किसी न किसी कारण को लेकर भड़काकर अपना स्वार्थ साध लेते हैं। इसके लिए वे धर्म का उपयोग करते हैं। जाति-जाति में झगड़े फैलाते रहते हैं।

महानगरों में कभी धर्म और जाति के नाम पर, कभी किन्हीं मांगों को लेकर मजदूर, विद्यार्थी, अध्यापक, कर्मचारी आदि सभी जन समुदायों के जुलूस आयोजित किया करते हैं। इस आयोजन के पीछे किसी प्रकार की वजह नहीं रहती। नेता लोग अपनी नेतागीरी चमकाने के लिए यह प्रदर्शन आयोजित करके महानगर की गति में कुछ समय के लिए रुकावट पैदा कर

देते हैं। महानगरों के राजनीतिक पक्ष में पूँजीपति और राजनेता की साँठ - गाँठ होती है। दोनों मिलकर सार्वजनिक धन को प्राप्त करते हैं। इसके लिए वे नियमों और कायदों को झुठलाकर, रिश्वत लेकर अपना पेट भरते रहते है। साथही यह प्रवृत्ति बुध्दिजीवी और नेताओं में भी देखने को मिलती है। स्वतंत्र पत्रकारिता का ढिंढोरा पिटनेवाले सम्पादक अपने पत्रों में सरकार विरोधी रिपोर्ट नहीं छापते। जो रिपोर्टर ऐसी हरकत करता है उसे सम्पादक नौकरी से निकाल देता है। इस प्रकार महानगर का राजनीतिक वातावरण नेताओं के अनुकूल ही रहता है।

[३] आर्थिक पक्ष :-

[अ] रोजी-रोटी की तलाश :- गाँव के युवक युवतियों को औद्योगिक तथा वैज्ञानिक विकास ने दुरूह बना दिया था। इस कारणवश वे रोजी-रोटी की तलाश में महानगर की ओर बढ़ जाते है। साथही इस औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्रांति से गाँवों में चलनेवाले कुटीर उद्योग भी नष्ट हो गये थे। जिससे ग्रामवासी दर्जी, नाई, रंगरेज, मोची, बढ़ई और सुनार बेकार होने लगे और परिणामत: वे काम की तलाश में महानगर की ओर बढ़ने लगे। एक ओर औद्योगीकरण से गाँव की हालत बिगड़ी वही शहरी जीवन भी दिन-ब-दिन जटिलताओं में जकड़ने लगा। गाँवों से रोजी-रोटी की तलाश में निकला व्यक्ति महानगरों में बेकारों की भीड़ का हिस्सा बन गया। ऐसे अनेक बेकारों को पेट की भूख मिटाना असंभव हो गया।

[ब] मकान की तलाश :- गाँवों और कस्बों से निरन्तर महानगर की ओर आनेवाले हर एक को रोजगार के साथ - साथ जीवनावश्यक वस्तु घर की आवश्यकता महसूस होने लगी। हर एक

को मकान आवश्यक है। परिणामत: महानगरों में आनेवालों की
9 संख्या ज्यादह होने के कारण कुछ लोगोंको मकान भी नसीब नहीं होता। बिना छत के रहनेवालों की संख्या बढ़ती जाने के कारण मकान कम होते गये परिणाम वही जो किराया बढ़ता गया। मध्यवर्गीय परिवार के लोगों को बड़ी - बड़ी चालों में रहने पर मजबूर होना पड़ा। कुछ लोगों को इस समस्या को हल करने के लिए लॉज अथवा हॉटेलो में रहना पड़ा। कुछ लोग झोंपड़ियों मे रहने लगे। महानगर का सबसे बड़ा वर्ग यह भी है जो सड़कों की फुटपाथों, दुकानों के चबुतरों और बड़ी-बड़ी पाईपों में अपना जीवन काट रहा हैं।

जिसे भी घर प्राप्त हुआ है वह आकार से बहुत छोटा होता है, जिसमें रहनेवाला परिवार जीवन को सिकोड़कर उसी में समा लेता है। ऐसी स्थिति के कारण मनुष्य कुण्ठा-ग्रस्त हो गया है। जिस वर्ग को छत भी नसीब नहीं हो पाया है वह वर्ग अपना जीवन खुले आकाश के नीचे सम्पन्न करता हैं।

[क] भीड़ :- महानगर में भीड़ व्यक्ति की अस्मिता के लिए आतंक बनी हुई है। भीड़ में हर एक आदमी एक दूसरे को पहचान नहीं पाता। आदमी के ऊपर आदमी और घरों के भीतर
9 घुसे हुए घर अति परिचिति को अपरिचिति में बदल देता हैं। प्लॅट फॉर्मों की भीड़ इन्सानों की न होकर मक्खियों की भिनभिनाट जैसी लगती हैं। " वह भीड़ में, परिवार में अजनबी और अकेला है। आज मशीनों की धड़धड़ाहटों से मनुष्य का कान फटा जा रहा है। वह "स्व" की आवाज भी नहीं सुन पा रहा है। मनुष्य सुबह से शाम तक कल - कारखानों - दफ्तरों में खट रहा है। हर क्षण भागम - भाग और स्नायविक तनाव से गुजर रहा हैं। वह बस में, रेल में घर में, मन्दिर में, सड़क पर जहाँ भी जाता हैं भीड़ का अनुभव करता है। इस भीड़ भरे वातावरण में

व्यक्ति अकेला रह जाता है। सभी अपने - अपने काम के लिए एक साथ जाते हैं। कोई मर भी जाये तो इस भीड़ पर कोई असर नहीं होता। भीड़ में व्यक्ति की गति भी अनजानी हो जाती है। उसे स्वयं की गति के बारे में भी मालूम नहीं रहता।

[ड] दफ्तरों का वातावरण:- सरकारी तथा गैरसरकारी दफ्तर महानगर की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं। दफ्तरोंका उसमें काम करनेवाले व्यक्ति की मानसिकता पर गहरा असर पड़ता हैं। महानगरों के दफ्तरों में काम करनेवाले कर्मचारियोंकी दिनचर्या इन दफ्तरों पर ही निर्भर रहती हैं। महानगर में सवेरे दफ्तर जाने वाले लोगों से लोकल ट्रेन और ट्रामगाड़ियाँ भरी हुई होती हैं। शाम दफ्तर छुटने के समय में भी यही हाल होता है। दफ्तरोंमें काम करनेवाला व्यक्ति अपनी पहचान खोकर व्यवस्था तंत्र का एक भाग सा बना हुआ होता है। अपनी आर्थिक कठिनाईयों को पुरा करने के लिए वह दफ्तरों में स्वयं को कैद कर लेता है। परिणामत: वह कटुता से घिरा हुआ होता है। इस कटुता को निकालने के लिए वह अपने से उपरवाले पदस्थित अफसरों के विषय में भद्दी बातें करके अपने मन को हल्का करता रहता है।

[४] धार्मिक पक्ष :- औद्योगिकरण ने जहाँ एक ओर आदमी को मशीन, विज्ञान, विनाशकारी शस्त्रों नें डराया दुसरी ओर धर्मभीरु भी बनाया। महानगर में आनेवाले हर एक व्यक्ति का कोई न कोई प्रतिस्पर्धी अवश्य होता है। हर एक व्यक्ति अपने जीवन में प्रगति चाहता हैं। धर्म के पिछे जाने से प्रतिस्पर्धा का भाव अधिक होता है। महानगर में मनुष्य का जीवन इतना व्यस्त है कि वह धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों के लिए समय नहीं दे पाता, क्योंकि उसे वह अन्धविश्वास समझाता है। महानगरों में रहनेवाले हर एक व्यक्ति में भय होता है। उसके

भय को धर्म पनाह देता है। धर्म से आज महानगर में रहनेवाले व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

महानगरों में जीवन का संतुलन बनाये रखने के लिए मन्दिर, आर्यसमाज, गुरूद्वार तथा अन्य धर्मस्थलों की स्थापना की जाती हैं। महानगर का एक वर्ग यह भी है जो कला को महत्व देते हुए सिनेमा देख सके, उसे मन्दिर मस्जिद, गुरूद्वारे आदि यह प्रदान करते है जो एक कलाप्रेमी को कला - दीर्घ और बुद्धिजीवी को साहित्य गोष्ठियाँ देती है। नित्य ऊबारू जीवनक्रम से कुछ क्षणों के लिए छुटकारा पाने के लिए, एक बदलाव के लिए धर्म स्थान तक जाने से प्राप्त होता है।

महानगरों में धार्मिक संस्थाओं का दुरूपयोग होने लगा हैं। धर्म के नामपर अनगिनत धन्दे पनप रहे हैं। आज हर एक धार्मिक संस्थान राजनीति का प्रमुख केंद्र बनता जा रहा है। जिस तरह नेता लोग झूठ बोलकर ओट प्राप्त करते हैं, उसी तरह आज राजनीति का प्रमुख केंद्र बन जाने के कारण धार्मिक संस्थानों में भी झूठ बोला जाता है। इन राजनेताओंने धर्म को झुठला दिया है। साथही इन संस्थानों के माध्यम से नाम और यश खरीदा जाता है। आज धार्मिक संस्थानों में पदों के लिए चुनाव लिया जाता है। आज कल मन्दीर का पुजारी और धार्मिक संस्थान के संस्थापक भी चरित्रवान नहीं होते। हर समय वे सैमिसॉन जैसे अपना रंग बदलते रहते हैं। इस प्रकार महानगर में धर्म का उपयोग अपने स्वार्थ के हो रहा है।

[५] भौगोलिक पक्ष :- उद्योग और कल - कारखाने ही नगर अथवा महानगर का प्रमुख आधार होते हैं। इन्हीं के प्राथमिक अवस्था से प्रगति होते हुए उद्योग के कारण ही नगर धीरे-धीरे महानगर बनता है। उद्योगपति अपने अस्तित्व स्थापना के लिए

भव्य इमारतें बनवाता है। वह अपने दफ्तरी कामों के लिए मध्य वर्ग को अपनाता है। लुईस मनफोर्ड ने अपनी पुस्तक " द सिटी इन द हिस्ट्री " में लिखा है - " नये नगर संनिवेश में दो मुख्य तत्व - फैक्टरी तथा गन्दी बस्ती के होते हैं। ये दोनों तत्व मिलकर इस बस्ती का निर्माण करते हैं जिसे हम नगर कहते हैं।"[3]

जहाँ फैक्टरी तथा रेलवे लाइनें चलती गयीं, वहाँ दरिद्रता पहुँचती गयी। नगरों में काम करने के कारण आया हुआ मजदूर कल - कारखानों के नजदीक स्थित होता गया। वह स्थान बहुधा रेल की सड़कों अथवा फैक्टरी के मध्य होता है। उनके इर्द-गिर्द कूड़ा - कटकट रहता है साथही शिशे के टुकडे तथा शराब की गंध व्याप्त होती है। वही स्थान उनके निवास के रूप में विकसित होता है।

महानगरों में अलग-अलग क्षेत्रों से आये हुए मजदूर लोगों के कारण महानगर विविध संस्कृतियों से घालमेल बन गया है। उसका एक भाग दूसरे भाग से एकदम भिन्न है। इसमें बहु मंजिला इमारतें, बड़ी - बड़ी कोठियाँ, भीड़ को लाने - लेजानेवाली रेल गाड़ियाँ चौड़ी सड़कों, पाँच सितारा होटलों और साथ ही मुहल्ले भी हैं जिनमें कोई सुविधा नहीं है। इन मुहल्लों मे कीचड़, गंदगी और कूड़े के ढ़ेर आदि भयानक दृश्य नजर आते हैं। जहाँ सौंदर्य का अहसास जिवित नहीं रह सका। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से महानगर भयानक बन चुके हैं।

[6] पारिवारिक पक्ष :- पहले ग्राम में संयुक्त परिवार हुआ करते थे। जिसमें जो पुरुष कर्ता हुआ करता था, वही घर का मुखिया कहलाता था। इसके विपरित स्थिति आज महानगरों में है। महानगरों में हमें छोटे - छोटे परिवार दिखाई देते हैं। इसका एकही कारण और वह यह है कि महानगरों में ग्राम की

तरह बड़े मकान नहीं मिलते। इसलिए महानगरों में छोटे - छोटे परिवार अलग - अलग बसने लगे हैं। गांव से महानगरों में आनेवाला व्यक्ति मकानों के ऊँचे किराए और महँगाई के कारणवश अपने साथ सिर्फ बच्चों और बीबी को ही लाता हैं। परिवार के बाकि सदस्य वृद्धघर छोड़कर आता है। इस प्रकार संयुक्त परिवारों का विघटन गांवों की अपेक्षा महानगरों में अधिक रूप से दिखाई हैं।

केवल महँगाई और मकानों के ऊँचे किराए के अतिरिक्त संयुक्त परिवार के विघटन के अन्य कारण भी हैं जो इस प्रकार हैं।- जैसे व्यक्तिवाद, भोगवाद, स्वार्थ, स्वतंत्र रहने की प्रवृत्ति याने निर्वैयक्तिकता और उच्छृंखलता आदि भी हैं। इनपर माता - पिता का अंकुश नहीं रहता। महानगरों में हर व्यक्ति घर से दूर स्कूल, कालेजों, ऑफिसों और विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाली लड़कियाँ और लड़के सुबह से श्याम तक महानगरों की भीड़ में कहीं खो जाते हैं। ऐसी स्थिति में घरवाले इनपर अंकुश नहीं लगा पाते। साथही इन कारणों की वजह से माता - पिता और बच्चों के बिच सिर्फ औपचारिकता ही रह जाती हैं।

महानगरों में पति - पत्नी के बीच वैवाहिक संबंधों का विघटन होते दिखाई देता हैं। पुरुष की अपेक्षा स्त्री की स्थिति महानगर में ऊँची दिखाई देती है। किन्तु इस स्त्री में समरसता का अभाव दिखाई देता है। इसी कारणवश महानगर में स्त्री पुरुष की अपेक्षा ज्यादा पढ़ी लिखी होने के कारण परिवार में पिता के अलावा माता और बच्चों की सत्ता अधिक दृष्टिगोचर होती है। ऐसे अनेक परिवार हैं जहाँ पति की अपेक्षा पत्नी अधिक कमाती है। कई स्त्रियाँ पति से अधिक पढ़ी लिखी होती हैं। कुछ परिवार लड़के - लड़कियों

के इशारे पर चलते हैं। वे ही ऐसे परिवारों के प्रमुख होते हैं।

महानगरीय परिवार के सदस्यों में व्यक्तिवाद अधिक तीव्रता से दिखाई देता हैं। ऐसी स्थिति में परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से तादात्म्य नहीं रख पाते। परिणामतः घर उन्हें होटल जैसा लगता है। जहाँ वे सिर्फ खाना खाने और आराम करने आते हैं।

महानगर की नई पीढ़ी इन रीतिरिवाजों को तोड़ रही है। वे अपने मन - माने ढंग से अपना जीवन व्यतित करना चाहते हैं। महानगरीय परिवार कृत्रिमता, यांत्रिकता और भौतिकवाद के कारण प्रकृति से दूर चला जाता दिखाई दे रहा है। धर्म-निरपेक्ष साहित्यों, वैज्ञानिक उपकरणों और यंत्रों के कारण आध्यात्मिकता और धार्मिकता महानगरीय परिवारों में न के बराबर प्रतित होता हैं।

[७] सामाजिक पक्ष :- महानगर में रहनेवाले लोग एक दूसरे के प्रति व्यक्ति के समान नहीं बल्कि वस्तु के समान व्यवहार करते हैं। इसका कारण महानगरीय जीवन में सामाजिक संबंधों की निर्वैयक्तिकता ही हैं। गांवों में जैसे प्रकार वस्तु की लेन देन चलती है, उसके विपरित महानगर में प्रत्येक वस्तु की किमत रुपयों में की जाती हैं। वहाँ अपनेपन को कोई स्थान नहीं दिया जाता। स्थान दिया जाता है तो केवल रुपयों को। रुपयों के आधारपर ही सभी व्यवहार चलते हैं। वहाँ व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं। महानगर में दुकानदार से लेकर सवारीवाले तक सभी अपने धन्दे से मतलब रखते हैं। वहाँ दिलचस्पी की बातों को वे नहीं मानते। उन्हें जो ग्राहक अपने लिए ज्यादा पैसे देगा वही पसंद आएगा। महानगरों में निर्वैयक्तिकता को केवल

12949

भागीड़ ही प्रोत्साहन देती है। महानगरीय लोग सिर्फ अपने पैट्रोलले की जमिन को ही देखते हैं। अपने आसपास के लोगों से उन्हें कोई
१ लेन - देन नहीं। यहाँ का हर एक आदमी भौतिक सुख के पिछे लगा हुआ दृष्टिगोचर होता हैं।

यांत्रिकता और औद्योगिकरण के कारण महानगरीय जीवन यंत्रवत बन गया है। " महानगर के हर व्यक्ति पर राजनैतिक परिदृश्य का दबाव, यांत्रिक, जीवन की विशेषताओं से उत्पन्न दबाव, और यौन - स्वच्छंदता की विस्फोटक स्थिति के दवाव ने मिलकर नगरीय व्यक्ति को न केवल बाहर से अपितु, भीतर से भी तोड़ डाला है "[४] उसका हर काम घड़ी नामक यंत्र से चलता है। उसकी दिनचर्या भी यांत्रिकता निर्धारित करती है। अगर कोई लोकल अपने टाईम से बाहर चली जाती है, तो हर व्यक्ति की घड़ी के उपर चलनेवाली दिनचर्या बदल जाती है। हर काम वह अपनी घड़ी के जरिए ही करता है। इसी यांत्रिकता के कारण महानगरीय आदमी का अपनापन कहीं खो गया हुआ नजर आता है।

महानगर में स्थित हर एक व्यक्ति पर कोई न कोई लेबिल चिपकाया गया है। कोई मरीज है तो कोई डाक्टर, कोई प्रोफेसर है तो कोई छात्र, कोई व्यापारी है तो कोई सौदागर, कोई अमिर है तो कोई गरीब है पर मनुष्य कोई नहीं है। कहा जाता है कि " आदमी सामाजिक प्राणी है " इसमें से " आदमी" शब्द काटा गया तो रह जाता है सिर्फ " सामाजिक प्राणी " यही स्थिति आज के महानगर में स्थित व्यक्ति की है।

महानगर में हर एक व्यक्ति का जीवन इतना गतिमान

बना हुआ है कि, उसे किसी की ओर देखने की भी फुर्सत रहती। अत: उसका परस्पर संपर्क अस्थाई और क्षणिक होता है। वह अपना संपर्क केवल अपने स्वार्थ के कारण बनाए रखता है।

गतिशीलता महानगरीय जीवन के सामाजिक पहलू की एक विशेषता होती है। महानगर के हर एक आदमी को अपने घर से दूर काम के लिए हर सुबह जाना पड़ता है। यह दौड़ दिन भर चलती रहती है। अपनी आर्थिक कठिनाईयों के कारण कभी - कभी लंबा रास्ता साईकिल पर तय करना होता है। केवल काम के कारण घूमने वालों के अतिरिक्त महानगर में अन्य लोगों की भी कोई कमी नहीं है। कोई मनोरंजन के लिए घूमता रहता है, तो कोई कुछ काम की तलाश में, तो कोई व्यर्थ ही घूमते रहते हैं, तो कोई सामान बेचने के लिए घूमा करता है। इस लिए उसे किसी प्रकार के मौसम की जरूरत नहीं होती। धूप में, बरसात में भी वह घूमता रहता है। उसपर इस वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जो महानगर लोकसंख्या और आकार से बड़ा होता है, उस महानगर में पड़ोसीपन की भावना कम दिखाई देती है। अधिकतर लोगों को अपने काम के कारण इतनी भी फुर्सत नहीं रहती की पड़ोसी की पूछताछ करें। काफी लोग काम के लिए सुबह घर से बाहर निकलते हैं और शाम को ही थके हारे वापस लौटते हैं। वापस लौटकर वे आराम की सोचते हैं। उन्हें पड़ोसी से क्या मतलब ? अपने घर के पास रहते हुए पड़ोसियों की वे पूछताछ नहीं कर पाते। वे अपने पड़ोसियों से निजता बनाना ठिक नहीं समझते क्योंकि अपने तरीके से रहने में उसे कठिनाई महसूस होती है। महानगरों में यातायात के साधनों के कारण अधिकतर लोग अपने मित्र कहीं बाहर ही बना लेते है। परिणामत: पड़ोसियों से घनिष्ठता बढ़ाने की कोई

जरूरत नहीं महसूस होती।

अगर किसी पड़ोसी से रुचि या लगाव प्राप्त हो गई तो संपर्क बढ़ जाता है, वर्ना सालों - साल नजदीक रहते हुए भी उन्हें अपने पड़ोसियों से कोई सरोकार नहीं रहता। महानगरों में अपने से दूसरों को तुच्छ समझाने वाले भी अधिक होते हैं। उनसे संपर्क रखना वे हीन समझते हैं। किसी गरीब आदमी से भी संबंध नहीं रखना चाहते। क्योंकि उस गरीब आदमी के कारण कहीं उसकी इज्जत न चली जाये।

अत: आज महानगरों में पड़ोसिपन का ह्रास होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसके अलावा प्रतिद्वंद्विता के कारण भी संपर्क टूट रहे हैं। यह प्रतिद्वंद्विता कहीं मुझे-कारखानदारों में, कहीं राजनीतियों में भी दिखाई देती हैं।

आज महानगर में दिखावे के पीछे लोग भागते नजर आते हैं। कोई सुंदर वस्तु उसे दिखाई पड़ी तो वह अपनी हैसियत न होते हुए भी कुछ करके उसे हासिल करना चाहता है। महानगरीय लोग रहन - सहन, वेशभूषा आदि पर इतना जोर देते हैं कि अन्य प्रकार के विकास पर इसका प्रभाव पड़ता है। अमीर लोग अपनी हैसियत का विज्ञापन करने के लिए आलिशान बंगले, नई चमकाती कारें खरीदते रहते हैं। यही नकल मध्यमवर्गीय करना चाहता है। अमीर लोग केवल इज्जत के लिए ही यह दिखावा करते रहते हैं।

आधुनिक युग में महानगरों में फैशन का नया दौर आकर पहूँच गया है। यह दौर फिल्मी अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के कारण नये - नये फैशन महानगरों में प्रसारित हो रहे हैं। इसका अनुकरण युवा वर्ग कर रहा है। यह प्राय: बालों के कट, वेशभूषा, सिगरेट पीने का तरीका और बोलचाल आदि का भी अनुकरण करके

एक फॅशन लाकर रखते हैं। इन फैशनों का दौर अभिनेता-ओंपर पाश्चात्यों से आया हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार इस फैशन का महानगर के सामाजिक स्तर पर काफी बदलाव आया हुआ प्रतीत होता है।

* निष्कर्ष *

महानगरीय, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक भौगोलिक, पारिवारिक और सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में आधुनिकीकरण यांत्रिकरण के कारण से मानव का जीवन भी यांत्रिक बना हुआ है। मानवता इन सभी स्थिति के कारण महानगरों में कहीं खो गयी है। हर एक आदमी अपने स्वयं के बारे में सोचता रहता है। महानगर में हर स्तर का आदमी दिखाई देता है। उसमें आई हुई यांत्रिकता के कारण मनुष्य नामक चीज नहीं मिलती। जैसा भी हो महानगर, अपनी समस्त अच्छाईयों बुराईयों से भरा - पूरा है। महानगर का वासी यदि महानगर को छोड़कर कहीं और गाँव या कस्बे में रहना चाहे तो वह नहीं रह पायेगा।

卐

** संदर्भ-सूची **

अ. क्र.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	पृष्ठ क्रमांक
[१]	डॉ. कुसुम अंसल	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों मे महानगर	१२
[२]	अनीता राकेश	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ	२०६
[३]	डॉ. कुसुम अंसल	आधुनिक हिन्दी उपन्यासों मे महानगर	५९
[४]	डॉ. सुषमा अग्रवाल	कहानीकार मोहन राकेश	३५

‡